



Neutral Citation No. - 2026:AHC:26221-DB

इलाहाबाद उच्च न्यायालय

आपराधिक अपील सं. - 1746 वर्ष 2015

प्रकाशनार्थ स्वीकृत

08.01.2026 को सुरक्षित

06.02.2026 को पारित

गुड्डू

.....अपीलकर्ता(गण)

बनाम

उत्तर प्रदेश राज्य

.....प्रत्यर्थी(गण)

अपीलकर्ता(गण) के अधिवक्ता : अभिषेक कुमार जायसवाल, आर.पी.एस. चौहान

प्रत्यर्थी(गण) के अधिवक्ता : शासकीय अधिवक्ता

न्यायालय सं. - 48

माननीय न्यायमूर्ति चंद्र धारी सिंह

माननीय न्यायमूर्ति देवेंद्र सिंह-I

(द्वारा: माननीय न्यायमूर्ति देवेंद्र सिंह-I)

1. वर्तमान आपराधिक अपील, विद्वान अपर सत्र न्यायाधीश, न्यायालय संख्या-4, कासगंज द्वारा मुकदमा अपराध संख्या 663/2010 अंतर्गत धारा 384 और 302 भा.द.सं. से उत्पन्न सत्र विचारण संख्या 94/2011 तथा मुकदमा अपराध संख्या 666/2010 आयुध अधिनियम की धारा 25/27 के अंतर्गत, थाना कासगंज, जिला कासगंज से उत्पन्न सत्र विचारण संख्या 95/2011 में पारित निर्णय एवं आदेश दिनांक 23.03.2015 के विरुद्ध प्रस्तुत की गई है, जिसके माध्यम से अपीलार्थी-गुड्डू को भारतीय दंड संहिता की धारा 302 के अंतर्गत आजीवन कारावास एवं 40,000/- रुपये के अर्थदंड, धारा 384 के अंतर्गत तीन वर्ष के कारावास एवं 5,000/- रुपये के अर्थदंड, तथा आयुध

“अस्वीकरण: अनुवादित निर्णय वादी के समझने हेतु है और इसका किसी अन्य उद्देश्य के लिए प्रयोग नहीं किया जा सकता है। सभी कानूनी और सरकारी उद्देश्यों के लिए, निर्णय का मूल संस्करण ही मान्य होगा।”



अधिनियम की धारा 25/27 के अंतर्गत एक वर्ष के कारावास एवं 1,000/- रुपये के अर्थदंड से दोषसिद्ध एवं दंडित किया गया है। यह भी निर्देशित किया गया है कि सभी सजाएं साथ-साथ चलेंगी।

2. संक्षेप में अभियोजन पक्ष की कहानी यह है कि, 20.12.2010 को शाम 06:30 बजे, जब आबिद हसन (सूचनाकर्ता), जो वाजिद हसन (मृतक) का सगा भाई है, अपने चचेरे भाई जलीस अहमद के साथ अपने भाई वाजिद हसन (जिसे इसके बाद 'मृतक' कहा जाएगा) से मिलने के लिए जिला कासगंज के बिलराम गेट के पास स्थित 'माँ गंगा पेट्रोल पंप' पर गया था—जहाँ मृतक एक मैनेजर के तौर पर काम करता था—ठीक उसी समय, अभियुक्त-अपीलकर्ता (गुड्डू) वहाँ पहुँचा और 'चौथ' (हफ्ता वसूली) के पैसे की माँग की। जब मृतक ने पैसे देने से इनकार कर दिया, तो अभियुक्त-अपीलकर्ता ने एक बंदूक निकाली और मृतक के सगे भाई आबिद हसन तथा चचेरे भाई जलीस अहमद की आँखों के सामने ही उस पर गोली चला दी; इसके बाद, हाथ में पिस्तौल लहराते हुए वह मौके से फरार हो गया। तत्पश्चात्, अपने भाई की गंभीर हालत को देखते हुए, आबिद हसन (सूचनाकर्ता) ने अन्य कर्मचारियों की मदद से उसे तत्काल सरकारी अस्पताल, कासगंज पहुँचाया, जहाँ से उसे मेडिकल कॉलेज, अलीगढ़ के लिए रेफर कर दिया गया। इसके बाद, उसे मेडिकल कॉलेज, अलीगढ़ ले जाया गया, जहाँ डॉक्टरों ने उसे मृत घोषित कर दिया। शिकायतकर्ता/सूचनाकर्ता ने 21.12.2010 को पुलिस थाने में एक लिखित तहरीर (प्रदर्श क-1) प्रस्तुत करके इस वाद की सूचना पुलिस अधिकारियों को दिया। परिणामस्वरूप, 21.12.2010 को 02:30 बजे, भारतीय दंड संहिता (भा.दं.सं.) की धारा 302 और 384 के अंतर्गत एफआईआर (प्रदर्श क-14) दर्ज किया गया; तथा 22.12.2010 को 09:30 बजे, अभियुक्त-अपीलकर्ता के विरुद्ध आयुध अधिनियम की धारा 25/27 के अंतर्गत एक और वाद (एफआईआर प्रदर्श क-12) दर्ज किया गया।

3. मृतक का पोस्टमार्टम 21.12.2010 को पी.डब्ल्यू.-8, डॉ. के. के. गुप्ता द्वारा पं. दीनदयाल उपाध्याय संयुक्त अस्पताल, अलीगढ़ में शाम 04:00 बजे किया गया। पोस्टमार्टम रिपोर्ट प्रदर्श क-8 के अनुसार, मृतक के शरीर पर निम्नलिखित चोटें पाई गईं:

"1. दाहिने घुटने पर 2.5 सेमी. X 1.5 सेमी. का फफोला।

“अस्वीकरण: अनुवादित निर्णय वादी के समझने हेतु है और इसका किसी अन्य उद्देश्य के लिए प्रयोग नहीं किया जा सकता है। सभी कानूनी और सरकारी उद्देश्यों के लिए, निर्णय का मूल संस्करण ही मान्य होगा।”



2. चेहरे के बाईं ओर, कान से 3 सेमी. आगे, 0.5 सेमी. X 0.4 सेमी. माप का एक बंदूक की गोली से हुआ घाव था, जो मांसपेशियों और हड्डी तक गहरा था। इसके किनारे घुमावदार थे। वहाँ कालापन था। घाव के चारों ओर 12 सेमी. X 10 सेमी. के क्षेत्र में टैटूइंग (बारूद के कणों के निशान) थी। घाव की दिशा बाईं से दाईं ओर, ऊपर से नीचे की ओर, और आगे से पीछे की ओर थी, तथा यह चोट संख्या 3 से जुड़ा हुआ था।

3. बंदूक की गोली से हुई एक और चोट, जो कि बाहर निकलने वाला घाव है, 0.9 सेमी. X 0.8 सेमी. माप की थी। यह गर्दन के दाहिने ओर, जबड़े की हड्डी से 03 सेमी. की दूरी पर स्थित थी। दाहिने कान से 1.5 सेमी. नीचे, इसके किनारे बाहर की ओर उभरे हुए थे।"

4. विवेचना के दौरान, घटना स्थल का नक्शा नज़री तैयार किया गया; घटना स्थल से खून के धब्बे वाले नमूने और मिट्टी के नमूने लिए गए। मृतक के खून से सने कपड़े 21.12.2010 को एक फर्द बरामदगी के ज़रिए ज़ब्त किए गए। 22.12.2010 को पुलिस ने अभियुक्त (गुड्डू) को गिरफ़्तार किया; उसने अपना जुर्म कबूल कर लिया और उसकी निशानदेही पर, एक .315 बोर की देसी पिस्तौल और चार ज़िंदा कारतूस बरामद किए गए, जिनका इस्तेमाल उसने अपराध करने में किया था। बरामद पिस्तौल और कारतूसों को फर्द बरामदगी प्रदर्श क-5 के ज़रिए कब्ज़े में ले लिया गया। देसी पिस्तौल की बरामदगी के संबंध में, अभियुक्त-अपीलकर्ता के खिलाफ़ आयुध अधिनियम, 1959 की धारा 25/27 के अंतर्गत एक अलग प्रकरण दर्ज किया गया।

5. विवेचना अधिकारी ने साक्षीगण के बयान दर्ज किए और जाँच पूरी होने के बाद, अभियुक्त-अपीलकर्ता के विरुद्ध भा.दं.सं. की धारा 384/302 के तहत अपराध के लिए आरोप-पत्र (प्रदर्श क-18) दायर की गई; साथ ही, अभियुक्त-अपीलकर्ता (गुड्डू) के विरुद्ध आयुध अधिनियम, 1959 की धारा 25/27 के अंतर्गत एक अलग आरोप-पत्र (प्रदर्श क-11) भी दायर की गई।

6. विद्वान विचारण न्यायालय ने अभियुक्त-अपीलकर्ता के खिलाफ़ भा.दं.सं. की धारा 302/384 और आयुध अधिनियम, 1959 की धारा 25/27 के तहत आरोप विरचित किए।

7. अभियुक्त-अपीलकर्ता ने खुद को निर्दोष बताया और विचारण की माँग किया।

“अस्वीकरण: अनुवादित निर्णय वादी के समझने हेतु है और इसका किसी अन्य उद्देश्य के लिए प्रयोग नहीं किया जा सकता है। सभी कानूनी और सरकारी उद्देश्यों के लिए, निर्णय का मूल संस्करण ही मान्य होगा।”



8. अभियुक्त-अपीलकर्ता का अपराध साबित करने के लिए, अभियोजन पक्ष ने ग्यारह साक्षीगण का परीक्षण किया।

9. अभियुक्त-अपीलकर्ता को दं.प्र.सं. की धारा 313 के अंतर्गत परीक्षित किया गया, जिसमें उसने अभियोजन पक्ष के साक्ष्य से इनकार किया और झूठा फँसाए जाने का दावा किया। हालाँकि, बचाव पक्ष की ओर से कोई साक्ष्य पेश नहीं किया गया।

10. अभिलेख पर मौजूद साक्ष्य को सुनने और उनका विश्लेषण करने के बाद, विचारण न्यायालय ने आक्षेपित निर्णय और आदेश के ज़रिए अभियुक्त-अपीलकर्ता को भा.दं.सं. की धारा 302/384 और 1959 के अधिनियम की धारा 25/27 के तहत दोषी ठहराया और ऊपर बताए अनुसार सज़ा सुनाई। इस आक्षेपित निर्णय और आदेश से व्यथित होकर, अपीलकर्ता (गुड्डू) ने यह आपराधिक अपील दायर किया है।

11. हमने अभियुक्त-अपीलकर्ता (गुड्डू) के अधिवक्ता श्री अभिषेक कुमार जायसवाल, राज्य सरकार के अधिवक्ता श्री एस.के. ओझा की दलीलें सुनीं और विचारण न्यायालय के अभिलेख का परिशीलन किया

12. अपीलकर्ता के अधिवक्ता ने दलील दिया है कि पी.डब्ल्यू.-1 (आबिद हसन) और पी.डब्ल्यू.-2 (मियाँ जलीस) खुद को घटना के प्रत्यक्षदर्शी बताते हैं, जबकि असल में वे 'हितबद्ध साक्षी' हैं, क्योंकि वे मृतक के करीबी रिश्तेदार हैं। उन्होंने आगे कहा कि न तो उनका घर घटना स्थल के पास है और न ही वे वहाँ काम कर रहे थे; इसलिए, घटना के समय उनकी वहाँ मौजूदगी की संभावना बहुत कम है और अभियोजन पक्ष ने अपना प्रकरण साबित करने के लिए उन्हें जान-बूझकर साक्षी के तौर पर पेश किया है। उन्होंने यह भी कहा कि अभियोजन पक्ष के बयान के अनुसार, अभियुक्त-अपीलकर्ता ने पी.डब्ल्यू.-1 (आबिद हसन) और पी.डब्ल्यू.-2 (मियाँ जलीस) की मौजूदगी में मृतक को जान से मारने के इरादे से उस पर गोली चलाई थी, लेकिन उन दोनों को एक भी चोट नहीं लगी; ऐसे में, घटना के समय इन साक्षीगण की वहाँ मौजूदगी बहुत ज़्यादा संदिग्ध है। उन्होंने आगे कहा कि अभियोजन पक्ष के साक्षीगण के बयानों में कई अहम विरोधाभास हैं।

अपीलकर्ता के पास विचाराधीन अपराध करने का कोई आशय नहीं था, क्योंकि इस संबंध में अभियोजन पक्ष द्वारा पुलिस अधिकारियों के समक्ष पहले कभी कोई शिकायत नहीं की गई थी।

“अस्वीकरण: अनुवादित निर्णय वादी के समझने हेतु है और इसका किसी अन्य उद्देश्य के लिए प्रयोग नहीं किया जा सकता है। सभी कानूनी और सरकारी उद्देश्यों के लिए, निर्णय का मूल संस्करण ही मान्य होगा।”



उन्होंने आगे यह भी कहा कि पी.डब्ल्यू.-6 (अल्लानूर) और पी.डब्ल्यू.-7 (शिव चरण) स्वतंत्र और स्वाभाविक साक्षी हैं, लेकिन अपनी गवाही में उन्होंने अभियोजन पक्ष के प्रकरण का समर्थन नहीं किया है। उन्होंने आगे यह भी कहा कि उक्त पिस्तौल और कारतूसों की कोई बैलिस्टिक विशेषज्ञ रिपोर्ट मौजूद नहीं है, जिससे यह साबित हो सके कि मृतक की हत्या करने में उक्त पिस्तौल का इस्तेमाल किया गया था। अभियुक्त-अपीलकर्ता के खिलाफ भारतीय दंड संहिता की धारा 384 के तहत कोई मामला नहीं बनता है, क्योंकि अभियुक्त-अपीलकर्ता द्वारा मृतक से जबरन वसूली की मांग किए जाने का आरोप अभियोजन पक्ष द्वारा साबित नहीं किया जा सका है। इस वाद के अलावा, अपीलकर्ता का कोई आपराधिक इतिहास नहीं है और वह 22.12.2010 से कारागार में निरुद्ध है।

13. अभियुक्त-अपीलकर्ता के विद्वान अधिवक्ता ने आगे यह भी कहा कि एफआईआर दर्ज कराने में एक दिन की देरी हुई है, जिसकी उचित व्याख्या अभियोजन पक्ष द्वारा नहीं की गई है। संपूर्ण तथ्य और परिस्थितियाँ यह संकेत देती हैं कि एफआईआर किसी से परामर्श करने के बाद दर्ज कराई गई थी।

14. उपरोक्त तर्कों का खंडन करते हुए, विद्वान ए.जी.ए. ने तर्क प्रस्तुत किया है कि अभियुक्त-अपीलकर्ता का नाम एफआईआर में दर्ज है। उन्होंने आगे प्रस्तुत किया कि यह घटना पी.डब्ल्यू.-1 और पी.डब्ल्यू.-2 की उपस्थिति में हुई थी, अतः वे इस घटना के स्वाभाविक साक्षी हैं और उनकी गवाही को केवल इस आधार पर नज़रअंदाज़ नहीं किया जा सकता कि वे 'हितबद्ध साक्षी' हैं। उन्होंने आगे यह भी प्रस्तुत किया कि जहाँ तक एफआईआर दर्ज करने में हुई देरी का प्रश्न है, मृतक को गोली लगने से चोटें आई थीं; पहले उसे सरकारी अस्पताल, कासगंज ले जाया गया, जिसके बाद उसे मेडिकल कॉलेज, अलीगढ़ रेफर कर दिया गया। अतः, एफआईआर दर्ज करने में एक दिन की देरी होना पूर्णतः स्वाभाविक है, क्योंकि मृतक के परिवारजनों/रिश्तेदारों की पहली प्राथमिकता मृतक की जान बचाना होगी, न कि एफआईआर दर्ज कराने के लिए पुलिस थाने की ओर दौड़ना होगा। अभियोजन पक्ष द्वारा परीक्षित किए गए स्वाभाविक साक्षीगण की प्रति-परीक्षा की गई, किंतु इस प्रति-परीक्षा के दौरान कोई भी महत्वपूर्ण विरोधाभास अथवा त्रुटि सामने नहीं आ सकी। अपीलकर्ता की दोषसिद्धि साक्ष्यों पर आधारित है और विचारण न्यायालय द्वारा अभियुक्त-अपीलकर्ता को दोषी ठहराया जाना पूर्णतः न्यायसंगत था। अपने तर्कों के समर्थन में,

उन्होंने माननीय सर्वोच्च न्यायालय द्वारा '**नामदेव बनाम महाराष्ट्र राज्य**' (2007 एआईआर "अस्वीकरण: अनुवादित निर्णय वादी के समझने हेतु है और इसका किसी अन्य उद्देश्य के लिए प्रयोग नहीं किया जा सकता है। सभी कानूनी और सरकारी उद्देश्यों के लिए, निर्णय का मूल संस्करण ही मान्य होगा।")



एससीडब्ल्यू 1835), 'मकबूल उर्फ जुबैर उर्फ शाहनवाज़ बनाम आंध्र प्रदेश राज्य' (2011 एआईआर एस.सी. 184) तथा 'रवि मंडल बनाम उत्तराखंड राज्य' (2023 3 ए.आई.सी.एल.आर. 508) के वादों में दिए गए निर्णयों पर भरोसा किया है।

15. हमने दोनों पक्षों के विद्वान अधिवक्ताओं द्वारा प्रस्तुत किए गए परस्पर विरोधी तर्कों पर विचार किया है और विचारण न्यायालय के अभिलेखों का अवलोकन किया है।

16. साक्ष्य के जाँच से पता चलता है कि पी.डब्ल्यू.-1, यानी शिकायतकर्ता (आबिद हसन) ने अपनी गवाही में, अभियोजन पक्ष की बात का समर्थन करते हुए कहा है कि 20.12.2010 (सोमवार) को वह पी.डब्ल्यू.-2 (मियाँ जलीस) के साथ अपने भाई (मृतक) से मिलने 'माँ गंगा पेट्रोल पंप' गया था। शाम 06:30 बजे कमरे में ट्यूब-लाइट की रोशनी थी। उस समय, अभियुक्त-अपीलकर्ता वहाँ पहुँचा और बकाया 'चौथ वसूली' के तौर पर 5000 रुपये की माँग किया; जब उसके भाई (मृतक) ने पैसे देने से मना कर दिया, तो उसने एक पिस्तौल निकाली और मृतक पर गोली चला दी, जिससे वह ज़मीन पर गिर पड़ा। जब वह और मियाँ जलीस (पी.डब्ल्यू.-2) उसके पीछे भागे, तो अभियुक्त-अपीलकर्ता पिस्तौल लहराते हुए मौके से भाग गया। मृतक को सरकारी अस्पताल, कासगंज ले जाया गया, जिसके बाद उसे मेडिकल कॉलेज, अलीगढ़ रेफर कर दिया गया। इसके बाद, उसे मेडिकल कॉलेज, अलीगढ़ ले जाया गया, जहाँ डॉक्टरों ने उसे मृत घोषित कर दिया। वहाँ से लौटने के बाद, उसने एक लिखित 'तहरीर' दिया और उसे प्रदर्श क-1 के रूप में साबित किया।

17. पी.डब्ल्यू.-2 (मियाँ जलीस) ने अपनी गवाही में अभियोजन पक्ष की कहानी का भी समर्थन किया है और कहा है कि मृतक 'माँ गंगा पेट्रोल पंप' पर मैनेजर के तौर पर काम करता था। उन्होंने आगे बयान दिया कि 20.12.2010 को जब वह पी.डब्ल्यू.-1 (आबिद हसन) के साथ मृतक से मिलने गए थे, तब शाम करीब 06:00 बजे अभियुक्त-अपीलकर्ता वहाँ पहुँचा और बकाया 'चौथ वसूली' के तौर पर 5000 रुपये की माँग की; जब मृतक ने पैसे देने से मना कर दिया, तो उसने पिस्तौल निकाली और मृतक पर गोली चला दी। इसके बाद, उन्होंने शिकायतकर्ता (पी.डब्ल्यू.-1) और पेट्रोल पंप पर काम कर रहे अन्य कर्मचारियों के साथ मिलकर अभियुक्त-अपीलकर्ता को पकड़ने की कोशिश की, लेकिन अभियुक्त-अपीलकर्ता पिस्तौल लहराते हुए और बाउंड्री-वॉल कूदकर मौके से भाग गया। इसके बाद, वह और पी.डब्ल्यू.-1 (आबिद हसन) पुलिस की गाड़ी से मृतक

“अस्वीकरण: अनुवादित निर्णय वादी के समझने हेतु है और इसका किसी अन्य उद्देश्य के लिए प्रयोग नहीं किया जा सकता है। सभी कानूनी और सरकारी उद्देश्यों के लिए, निर्णय का मूल संस्करण ही मान्य होगा।”



को सरकारी अस्पताल ले गए, जहां से मृतक को मेडिकल कॉलेज, अलीगढ़ रेफर कर दिया गया, जहां डॉक्टरों ने उसे मृत घोषित कर दिया।

18. पी.डब्ल्यू.-3, सगीर अहमद ने अपनी गवाही में अभियोजन पक्ष की कहानी का भी समर्थन किया है और कहा है कि पी.डब्ल्यू.-9, उपनिरीक्षक (अरुण कुमार) ने उन्हें शाम करीब 07:45 बजे बुलाया और 'विलराम गेट' पर आने को कहा। जब वह अपनी बाइक छोड़कर वहां पहुंचे, तो उन्होंने देखा कि अभियुक्त-अपीलकर्ता पुलिस की गाड़ी (जीप) में बैठा हुआ था। इसके बाद, वह पुलिस अधिकारियों के साथ, अभियुक्त-अपीलकर्ता के बताए अनुसार पैदल चलकर पेट्रोल पंप के पीछे स्थित आम के बाग (यानी घटना स्थल) पर गए; वहां अभियुक्त-अपीलकर्ता ने पुलिस अधिकारियों के सामने कथित पिस्तौल और एक जिंदा कारतूस पेश किया, और यह स्वीकार किया कि उसने मृतक की हत्या करने के लिए उसी पिस्तौल का इस्तेमाल किया था।

19. पी.डब्ल्यू.-4 (राज अहमद) ने अपनी गवाही में अभियोजन पक्ष की कहानी का भी समर्थन किया है। अपनी गवाही में, उन्होंने कहा है कि उन्होंने मृतक के भाई, यानी पी.डब्ल्यू.-1 (शिकायतकर्ता) के कहने पर तहरीर लिखी थी।

20. पी.डब्ल्यू.-5 (फ़िरोज़ खान) ने अपनी गवाही में कहा है कि मृतक के पंचायतनामा की कार्यवाही उनकी मौजूदगी में अलीगढ़ मेडिकल आउटपोस्ट पर हुई थी। उन्होंने इसे प्रदर्श क-7 के रूप में साबित किया।

21. पी.डब्ल्यू.-6 (अल्ला नूर) एक इलेक्ट्रीशियन हैं, जो घटना के समय 'माँ गंगा पेट्रोल पंप' पर काम कर रहे थे। अपनी गवाही में, उन्होंने कहा है कि उन्होंने पी.डब्ल्यू.-1, पी.डब्ल्यू.-2 और मृतक को पेट्रोल पंप पर देखा था और गोली चलने की आवाज़ सुनी थी। उन्होंने आगे गवाही दी कि उन्होंने देखा कि किसी ने मृतक पर गोली चलाने के बाद मौके से भागने की कोशिश किया, लेकिन उन्होंने यह नहीं देखा कि मृतक पर गोली किसने चलाई थी।

22. पी.डब्ल्यू.-7, शिव चरण, एक औपचारिक साक्षी हैं। अपनी गवाही में, उन्होंने कहा है कि न तो उन्होंने घटना को देखा था और न ही उनकी मौजूदगी में कोई घटना हुई थी।

23. पी.डब्ल्यू.-8, डॉ. के. के. गुप्ता, ने मृतक का पोस्टमार्टम किया था। उन्होंने इसे प्रदर्श क-8 के रूप में साबित किया। पी.डब्ल्यू.-9 (अरुण कुमार), एसडी ने प्रकरण की विवेचना किया था।

पी.डब्ल्यू.-10 (अजय सिंह चाहर) ने प्रकरण की आगे की विवेचना की थी।

“अस्वीकरण: अनुवादित निर्णय वादी के समझने हेतु है और इसका किसी अन्य उद्देश्य के लिए प्रयोग नहीं किया जा सकता है। सभी कानूनी और सरकारी उद्देश्यों के लिए, निर्णय का मूल संस्करण ही मान्य होगा।”



24. पी.डब्ल्यू.-11 (प्रदीप कुमार शर्मा), उपनिरीक्षक, वर्तमान में सीसीआर, अलीगढ़ में तैनात हैं। अपनी गवाही में, उन्होंने कहा है कि घटना के समय वे कासगंज पुलिस स्टेशन में उपनिरीक्षक के पद पर तैनात थे। उन्होंने आगे गवाही दी कि उन्होंने घटनास्थल का नक्शा नज़री तैयार किया था। उन्होंने आगे गवाही दी कि विवेचना के दौरान, उन्होंने घटनास्थल से फ़्लोरबोर्ड का खून से सना हुआ एक टुकड़ा, रज़ाई का खून से सना हुआ एक टुकड़ा और एक चली हुई गोली बरामद की थी। उन्होंने इसे प्रदर्शक-16 के रूप में साबित किया।

25. जहाँ तक इस तर्क का सवाल है कि पी.डब्ल्यू.-1 (आबिद हसन) और पी.डब्ल्यू.-2 (मियाँ जलीस) 'हितबद्ध साक्षी' हैं, यह बात भली-भाँति स्थापित है कि किसी 'स्वतंत्र गवाह' को केवल इस आधार पर 'हितबद्ध साक्षी' नहीं कहा जा सकता। हितबद्ध साक्षी वे होते हैं जो किसी मुकदमे/वाद से कोई लाभ उठाना चाहते हैं। यदि परिस्थितियाँ यह दर्शाती हैं कि कोई साक्षी घटना स्थल पर मौजूद था और उसने अपराध को अपनी आँखों से देखा था, तो उसकी गवाही को केवल इस आधार पर खारिज नहीं किया जा सकता कि वह पीड़ित का निकट संबंधी है। सामान्यतः, पीड़ित के निकट संबंधियों द्वारा किसी निर्दोष व्यक्ति को झूठे आरोप में फँसाने की संभावना कम ही होती है। किसी साक्षी की विश्वसनीयता पर तब तक प्रश्नचिह्न नहीं लगाया जा सकता, जब तक कि यह आरोप सिद्ध न हो जाए कि उसने असली अपराधी को बचाने और किसी निर्दोष व्यक्ति को फँसाने के उद्देश्य से झूठी गवाही दी है। कोई साक्षी तभी 'हितबद्ध' माना जाता है, जब उसे मामले के परिणाम से कोई लाभ प्राप्त होता हो, अथवा जब उसकी अभियुक्त के प्रति कोई शत्रुता हो। 'स्टेट ऑफ़ पंजाब बनाम हरदम सिंह' (2005, एस.सी.सी. क्रिमिनल 834) के मामले में यह निर्णय दिया गया था कि सामान्यतः मृतक के संबंधी किसी निर्दोष व्यक्ति के विरुद्ध झूठी गवाही नहीं देंगे, जिससे कि असली अपराधी बिना किसी दंड के बच निकल सके; इसके विपरीत, ऐसे साक्षी सदैव असली अपराधी को सजा दिलवाने का ही प्रयास करेंगे।

26. 'दलीप सिंह बनाम स्टेट ऑफ़ पंजाब' (ए.आई.आर. 1953, एस.सी. 364) के वाद में यह निर्णय दिया गया था कि यह तर्क कि साक्षी निकट संबंधी होने के कारण 'पक्षद्रोही गवाह' हैं और इसलिए उनकी गवाही पर विश्वास नहीं किया जाना चाहिए, पूर्णतः आधारहीन है। इसी प्रकार का दृष्टिकोण 'हरबंस कौर बनाम स्टेट ऑफ़ हरियाणा' (2005, एस.सी.सी. (क्रिमिनल) 1213) तथा 'स्टेट ऑफ़ U.P. बनाम किशन चंद्र और अन्य' (2004 (7), एस.सी.सी. 629) के वादों में भी अपनाया गया है। साक्षीगण को 'हितबद्ध साक्षी' के रूप में चिन्हित करने तथा साक्षीगण के निकट "अस्वीकरण: अनुवादित निर्णय वादी के समझने हेतु है और इसका किसी अन्य उद्देश्य के लिए प्रयोग नहीं किया जा सकता है। सभी कानूनी और सरकारी उद्देश्यों के लिए, निर्णय का मूल संस्करण ही मान्य होगा।"



संबंधियों की विश्वसनीयता से संबंधित तर्कों की जाँच अनेक न्यायिक मामलों में की जा चुकी है। एक करीबी रिश्तेदार, जो किसी मामले के हालात में एक बहुत ही स्वाभाविक साक्षी होता है, उसे 'हितबद्ध साक्षी' नहीं माना जा सकता; जैसा कि **दलबीर कौर बनाम पंजाब राज्य, एआईआर 1977 एस.सी. 472** वाद में निर्णीत किया गया था। महज़ इस बात से कि साक्षी रिश्तेदार थे या हितबद्ध थे, उनकी गवाही को सीधे तौर पर खारिज करने के लिए यह बात अपने आप में काफी नहीं होगी—जब तक कि यह साबित न हो जाए कि उनकी गवाही में कोई गंभीर खामियां हैं, जिनसे अदालत के मन में काफी संदेह पैदा होता हो। **गुजरात राज्य बनाम नागिनभाई धूलाभाई पटेल एआईआर 1983 एस.सी. 839** वाद में भी इसी तरह का विचार व्यक्त किया गया था।

27. इस वाद में, यह सही है कि पी.डब्ल्यू.-1 (आबिद हसन) मृतक का भाई है, जबकि पी.डब्ल्यू.-2 (मियां जलीस) मृतक का चचेरा भाई है; लेकिन यह घटना शाम लगभग 06:00 बजे पेट्रोल पंप पर हुई थी, जहाँ मृतक मैनेजर के तौर पर काम करता था। ऐसे में, घटना स्थल पर उनकी मौजूदगी बिल्कुल स्वाभाविक है। यह सही है कि इस कथित घटना में इन साक्षीगण में से किसी को भी कोई चोट नहीं लगी, जबकि इन साक्षीगण का बयान है कि अभियुक्त-अपीलकर्ता ने मृतक पर गोली चलाई थी। लेकिन इस संबंध में यह देखा जा सकता है कि अभियोजन पक्ष के प्रकरण के अनुसार, अभियुक्त-अपीलकर्ता (गुड्डू) केवल मृतक से ही नाराज़ था—चौथ की बकाया रकम को लेकर, जिसे मृतक ने देने से मना कर दिया था। अभियोजन पक्ष का लगातार यही बयान रहा है कि अभियुक्त-अपीलकर्ता ने मृतक को जान से मारने के इरादे से उस पर गोली चलाई थी। जब अभियुक्त-अपीलकर्ता ने मृतक को निशाना बनाकर गोली चलाई, तो यह कोई अस्वाभाविक बात नहीं है कि घटना स्थल पर मौजूद साक्षीगण को कोई चोट न लगे। इन साक्षीगण से जिरह भी की गई, लेकिन उनके बयानों में कोई खास विरोधाभास या कमी नहीं निकाली जा सकी। उनके बयान मेडिकल सबूतों से मेल खाते हैं। इसके अलावा, मृतक की पोस्टमार्टम रिपोर्ट से पता चलता है कि उसे गोली लगने से चोटें आई थीं; इससे यह संकेत मिलता है कि अभियुक्त-अपीलकर्ता द्वारा इस्तेमाल किया गया हथियार एक देसी पिस्तौल थी, जो .315 बोर की थी। इस तरह की पिस्तौल से छर्रे नहीं निकलते, बल्कि सीधे गोली ही निशाने पर लगती है। ऐसे हथियारों के मामले में छर्रों के फैलने का सवाल ही नहीं उठता, जिससे कि निशाने के पास खड़े किसी अन्य व्यक्ति को चोट लग सके।

“अस्वीकरण: अनुवादित निर्णय वादी के समझने हेतु है और इसका किसी अन्य उद्देश्य के लिए प्रयोग नहीं किया जा सकता है। सभी कानूनी और सरकारी उद्देश्यों के लिए, निर्णय का मूल संस्करण ही मान्य होगा।”



28. इस संबंध में यह देखा जा सकता है कि दोनों साक्षीगण ने स्पष्ट रूप से कहा है कि अभियुक्त-अपीलकर्ता ने मृतक पर उसे जान से मारने के उद्देश्य से गोली चलाई थी। एफआईआर में भी यह बात स्पष्ट रूप से कही गई थी। चूंकि पी.डब्ल्यू.-1 और पी.डब्ल्यू.-2 की गवाही ठोस और विश्वसनीय प्रतीत होती है, इसलिए उनकी गवाही को केवल इस आधार पर खारिज नहीं किया जा सकता कि वे पीड़ित के करीबी रिश्तेदार हैं।

29. जहां तक एफआईआर दर्ज करने में देरी के सवाल का संबंध है, यह बात भली-भांति स्थापित है कि यदि एफआईआर दर्ज करने में हुई देरी की व्याख्या अभिलेख पर मौजूद सबूतों से हो जाती है, तो अभियोजन पक्ष के खिलाफ केवल इस आधार पर कोई प्रतिकूल निष्कर्ष नहीं निकाला जा सकता कि एफआईआर देरी से दर्ज की गई थी। ऐसा कोई कठोर और निश्चित नियम नहीं है कि एफआईआर दर्ज करने में कितनी भी देरी होने पर अभियोजन पक्ष का प्रकरण अपने आप ही संदिग्ध हो जाएगा। "रविंदर कुमार और अन्य बनाम पंजाब राज्य", (2001) 7 एस.सी.सी. 690 में यह अभिनिर्धारित किया गया है; एफआईआर दर्ज करने में देरी के आधार पर अभियोजन मामलों पर हमला करना, आपराधिक मामलों में एक घिसी-पिटी और बेमतलब की बात बनकर रह गया है। ज्यादातर आपराधिक मामलों में यह एक आम बात है कि पुलिस को पहली जानकारी देने में कुछ देरी हो जाती है। यह याद रखना ज़रूरी है कि कानून ने एफआईआर दर्ज करने के लिए कोई तय समय सीमा नहीं रखी है। इसलिए, देरी से दर्ज की गई एफआईआर गैर-कानूनी नहीं होती। बेशक, एफआईआर को तुरंत और बिना किसी देरी के दर्ज करवाना ही सबसे अच्छा होता है, क्योंकि इससे अभियोजन पक्ष को दोहरे फायदे मिलते हैं। पहला फायदा यह है कि इससे बिना किसी समय की बर्बादी के जांच शुरू हो जाती है। दूसरा फायदा यह है कि इससे किसी झूठी कहानी को मनगढ़ंत तरीके से गढ़ने का कोई मौका नहीं बचता। तुरंत दर्ज की गई एफआईआर के इन दो फायदों को छोड़कर, देरी से दर्ज की गई एफआईआर की कमियां किसी भी अभियोजन मामले के लिए जानलेवा साबित नहीं हो सकतीं। इस बात को नज़रअंदाज़ नहीं किया जा सकता कि तुरंत दर्ज की गई एफआईआर भी, उसमें लिखी गई बातों के पूरी तरह सच होने की पक्की गारंटी नहीं होती। जब किसी मामले में एफआईआर दर्ज करने में देरी होने के आधार पर आलोचना की जाती है, तो अदालत को यह देखना होता है कि आखिर देरी किस वजह से हुई। एफआईआर दर्ज होने में देरी होने के कई असली कारण हो सकते हैं। गांव के लोगों को शायद इस बात की जानकारी न हो कि किसी अपराध के बारे में पुलिस को बिना किसी देरी के बताना कितना ज़रूरी

“अस्वीकरण: अनुवादित निर्णय वादी के समझने हेतु है और इसका किसी अन्य उद्देश्य के लिए प्रयोग नहीं किया जा सकता है। सभी कानूनी और सरकारी उद्देश्यों के लिए, निर्णय का मूल संस्करण ही मान्य होगा।”



है। इस तरह की जानकारी की कमी शहरी लोगों में भी कोई बहुत अनोखी बात नहीं है। हो सकता है कि उनके मन में तुरंत पुलिस थाने जाने का विचार ही न आए। एक और संभावना यह है कि जानकारी देने वालों के लिए पुलिस थाने तक पहुंचने के लिए पर्याप्त यातायात के साधन उपलब्ध न हों। तीसरा कारण, जो कि काफी आम है, यह है कि मृतक के सगे-संबंधियों को पुलिस थाने जाकर ज़रूरी जानकारी देने के लिए, अपने मन को शांत करने और खुद को संभालने में काफी समय लग सकता है। एक और कारण यह हो सकता है कि जिन लोगों को यह जानकारी देनी होती है, वे खुद शारीरिक रूप से इतने कमज़ोर या घायल हो सकते हैं कि घटना के बारे में अधूरी-अधूरी जानकारी मिलने पर पुलिस को खुद उनके पास पहुंचना पड़ता है।

30. अमर सिंह बनाम बलविंदर सिंह और अन्य (2003) 2 एस.सी.सी 518 के वाद में, माननीय सर्वोच्च न्यायालय ने अभिनिर्धारित किया कि, "हमारी राय में, घटना की एफआईआर दर्ज कराने में जो समय लगा, उसकी पूरी तरह से व्याख्या अभिलेख पर मौजूद सबूतों से हो जाती है; और केवल इस आधार पर अभियोजन पक्ष के विरुद्ध कोई प्रतिकूल निष्कर्ष नहीं निकाला जा सकता कि एफआईआर अगले दिन रात 9:20 बजे दर्ज कराई गई थी। ऐसा कोई कठोर और निश्चित नियम नहीं है कि एफआईआर दर्ज कराने में हुई किसी भी देरी से अभियोजन पक्ष का मामला स्वतः ही संदिग्ध हो जाएगा। यह अनिवार्य रूप से प्रत्येक मामले के तथ्यों और परिस्थितियों पर निर्भर करता है कि क्या एफआईआर दर्ज कराने में ऐसी कोई देरी हुई है, जिससे अभियोजन पक्ष के प्रकरण की सत्यता पर संदेह उत्पन्न हो सके; और इसके लिए कई परिस्थितियों, जैसे कि प्रथम सूचना देने वाले की स्थिति, लगी चोटों की प्रकृति, पीड़ितों की संख्या, उन्हें चिकित्सीय सहायता प्रदान करने के लिए किए गए प्रयास, अस्पताल और पुलिस थाने की दूरी आदि को ध्यान में रखा जाना चाहिए। ऐसा कोई गणितीय सूत्र नहीं है, जिसके आधार पर केवल एफआईआर दर्ज कराने में हुई देरी के कारण ही किसी भी पक्ष में कोई निष्कर्ष निकाला जा सके।"

31. इस संबंध में, तारा सिंह बनाम पंजाब राज्य एआईआर (1991) एस.सी. 63 में की गई निम्नलिखित टिप्पणी पर ध्यान देना भी उपयोगी होगा:

"एफआईआर दर्ज कराने में हुई देरी, अपने आप में, अभियोजन पक्ष के प्रकरण पर संदेह करने का आधार नहीं हो सकती। भारत की मौजूदा परिस्थितियों को देखते हुए, यह उम्मीद नहीं की जा सकती कि घटना के तुरंत बाद ये ग्रामीण पुलिस थाने की

"अस्वीकरण: अनुवादित निर्णय वादी के समझने हेतु है और इसका किसी अन्य उद्देश्य के लिए प्रयोग नहीं किया जा सकता है। सभी कानूनी और सरकारी उद्देश्यों के लिए, निर्णय का मूल संस्करण ही मान्य होगा।"



ओर दौड़ पड़ेंगे। मानवीय स्वभाव को देखते हुए, घटना के प्रत्यक्षदर्शी बने सगे-संबंधियों से यह अपेक्षा नहीं की जा सकती कि वे पुलिस को रिपोर्ट देने में किसी मशीन की तरह, पूरी तत्परता के साथ काम करेंगे। कई बार, किसी विपत्ति के कारण गहरे शोक में डूबे होने के चलते, उन्हें तुरंत यह ख्याल नहीं आ पाता कि उन्हें पुलिस में रिपोर्ट दर्ज करानी चाहिए। आखिरकार, ऐसी परिस्थितियों में, पुलिस थाने जाकर रिपोर्ट दर्ज कराने में उन्हें कुछ समय लगना बिल्कुल स्वाभाविक है। बेशक, गुटबाजी से जुड़े गंभीर मामलों में, विरोधी गुट के लोगों को झूठा फंसाने की प्रवृत्ति अक्सर देखने को मिलती है। ऐसे निर्दोष व्यक्तियों को दोषसिद्धि के खतरे से बचाने के लिए, न्यायालयों को ऐसे 'हितबद्ध साक्षीगण' के साक्ष्यों की जांच-परख अत्यंत सावधानी और सतर्कता के साथ करनी चाहिए; उन्हें साक्ष्यों की गहन छानबीन करके 'दूध का दूध और पानी का पानी' (सत्य को असत्य से अलग) करना चाहिए। ऐसा करते समय, एफआईआर में दर्ज विवरणों की भी सावधानीपूर्वक जांच की जानी चाहिए। तथापि, जब तक साक्ष्यों में किसी प्रकार की 'मनगढ़ंत कहानी' के संकेत न मिलें, तब तक न्यायालय केवल 'देरी' के आधार पर अभियोजन पक्ष के उस कथन को खारिज नहीं कर सकता, जो एफआईआर में दर्ज है और जिसकी पुष्टि बाद में साक्ष्यों द्वारा भी हुई है। ये सभी मामले साक्ष्यों के मूल्यांकन से संबंधित हैं, और इनका बहुत कुछ दारोमदार प्रत्येक मामले के विशिष्ट तथ्यों और परिस्थितियों पर निर्भर करता है।"

32. साहेबराव और अन्य बनाम महाराष्ट्र राज्य (2006) 9 एस.सी.सी. 794 के वाद में, न्यायालय ने अभिनिर्धारित किया है: "इस न्यायालय का स्थापित विधिक सिद्धांत यह है कि एफआईआर दर्ज करने में हुई देरी, अपने आप में, अभियोजन पक्ष के प्रकरण पर संदेह करने या उसे खारिज करने का आधार नहीं हो सकती है। एफआईआर दर्ज करने में हुई देरी न्यायालय को इस बात की जाँच करने के लिए सतर्क करती है कि क्या कोई उचित स्पष्टीकरण दिया गया है, और यदि दिया गया है, तो क्या वह संतोषजनक है।"

33. विधि की उपरोक्त चर्चा से यह स्पष्ट है कि अभियोजन पक्ष के कथन को केवल एफआईआर दर्ज करने में हुई देरी के आधार पर खारिज नहीं किया जा सकता। न्यायालय को देरी का स्पष्टीकरण देने के लिए अभियोजन पक्ष द्वारा प्रस्तुत स्पष्टीकरण की जाँच करनी होगी। ऐसी कई परिस्थितियाँ हो सकती हैं—विशेष रूप से पीड़ितों की संख्या, घटना स्थल पर व्याप्त वातावरण, "अस्वीकरण: अनुवादित निर्णय वादी के समझने हेतु है और इसका किसी अन्य उद्देश्य के लिए प्रयोग नहीं किया जा सकता है। सभी कानूनी और सरकारी उद्देश्यों के लिए, निर्णय का मूल संस्करण ही मान्य होगा।"



या यह कि शिकायतकर्ता भयभीत हो सकता है और घटित घटना के परिणामस्वरूप अपने विरुद्ध होने वाली कार्रवाई से डर सकता है। यदि अभियोजन पक्ष देरी का स्पष्टीकरण देता है, तो न्यायालय को केवल इसी आधार पर अभियोजन पक्ष की कहानी को खारिज नहीं करना चाहिए। इसलिए, साक्षीगण द्वारा बताए गए संपूर्ण घटनाक्रम की व्याख्या और जाँच की जानी चाहिए, ताकि यह निर्णय लिया जा सके कि क्या कोई अनुचित और अस्पष्टीकृत देरी हुई है जो अभियोजन पक्ष के प्रकरण की जड़ को ही प्रभावित करती हो; और यदि कुछ अस्पष्टीकृत देरी है भी, तो न्यायालय को इस बात पर विचार करना होगा कि क्या उसे 'असामान्य' कहा जा सकता है। हाल ही में, **पलानी बनाम तमिलनाडु राज्य (आपराधिक अपील संख्या 1100/2009, निर्णय दिनांक 27.11.2018)** के वाद में, सर्वोच्च न्यायालय ने यह टिप्पणी की थी कि कुछ मामलों में एफआईआर दर्ज करने में देरी होना अपरिहार्य होता है। यदि साक्षी के पास अभियुक्त को झूठा फँसाने का कोई उद्देश्य नहीं है, तो लंबी देरी को भी क्षम्य माना जा सकता है।

34. इस वाद में, यह साफ़ है कि मृतक के शरीर के ज़रूरी हिस्सों पर गोली लगने से चोटें आई थीं और घटना के तुरंत बाद उसे सरकारी अस्पताल, कासगंज ले जाया गया, और उसी रात उसे मेडिकल कॉलेज, अलीगढ़ रेफर कर दिया गया। इसलिए, यह ज़ाहिर है कि शिकायतकर्ता के पास घटना वाले दिन रिपोर्ट दर्ज कराने का कोई मौका नहीं था, क्योंकि वह मृतक की देखभाल कर रहा था। ऐसे तथ्यों और परिस्थितियों में, यह बिल्कुल स्वाभाविक है कि मृतक के परिवार के सदस्य/रिश्तेदार की पहली प्राथमिकता मृतक की जान बचाना होगी, न कि एफआईआर दर्ज कराने के लिए पुलिस थाने की ओर भागना। पी.डब्ल्यू.-1 (आबिद हसन)/शिकायतकर्ता ने काफ़ी और भरोसेमंद सफ़ाई दी है कि अगले दिन जब वह अपने घर आया, तो उसने लिखित तहरीर प्रदर्शक-1 जमा करके पुलिस को मामले की सूचना दी। मौजूदा तथ्यों और परिस्थितियों में, पी.डब्ल्यू.-1 का यह बयान काफ़ी विश्वसनीय है और इस बयान पर शक करने की कोई गुंजाइश नहीं है। चूंकि एफआईआर दर्ज कराने में हुई देरी की सफ़ाई संतोषजनक और भरोसेमंद सबूतों के आधार पर दी गई है, इसलिए एफआईआर दर्ज कराने में हुई देरी के कारण अभियोजन पक्ष के प्रकरण के खिलाफ कोई प्रतिकूल निष्कर्ष नहीं निकाला जा सकता।

35. उपरोक्त टिप्पणियों को देखते हुए, हमारी राय है कि अपीलकर्ता-अभियुक्त (गुड्डू) को भा.दं.सं. की धारा 302, 384 और आयुध अधिनियम की धारा 25/27 के तहत दोषी ठहराना सबूतों पर

“अस्वीकरण: अनुवादित निर्णय वादी के समझने हेतु है और इसका किसी अन्य उद्देश्य के लिए प्रयोग नहीं किया जा सकता है। सभी कानूनी और सरकारी उद्देश्यों के लिए, निर्णय का मूल संस्करण ही मान्य होगा।”



आधारित है, और विचारण न्यायालय ने अपीलकर्ता-अभियुक्त को दोषी ठहराकर सही निर्णय किया था।

36. तदनुसार, यह अपील एतद्वारा **खारिज** की जाती है। मुकदमा अपराध संख्या 663/2010 अंतर्गत धारा 384 और 302 भा.द.सं. से उत्पन्न सत्र विचारण संख्या 94/2011 तथा मुकदमा अपराध संख्या 666/2010 आयुध अधिनियम की धारा 25/27 के अंतर्गत, थाना कासगंज, जिला कासगंज से उत्पन्न सत्र विचारण संख्या 95/2011 में अभियुक्त-अपीलार्थी (गुड्डू) की दोषसिद्धि और दंडादेश की पुष्टि की जाती है।

37. न्यायालय की सहायता करने हेतु, विद्वान न्यायमित्र श्री अभिषेक कुमार जायसवाल को, इस निर्णय की प्रति प्रस्तुत किए जाने की तिथि से एक माह के भीतर, शुल्क के रूप में 25,000/- रुपये का भुगतान किया जाएगा।

(न्यायमूर्ति देवेन्द्र सिंह-1) (न्यायमूर्ति चंद्र धारी सिंह)

6 फरवरी, 2026

संजीत